॥ श्रीदुर्गायै नमः ॥

अथ श्रीदुर्गासप्तशती

प्रथमोऽध्यायः

मेधा ऋषिका राजा सुरथ और समाधिको भगवतीकी महिमा बताते हुए मधु-कैटभ-वधका प्रसंग सुनाना

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्रजपे विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥ १॥

प्रथम चरित्रके ब्रह्मा ऋषि, महाकाली देवता, गायत्री छन्द, नन्दा शक्ति, रक्तदन्तिका बीज, अग्नि तत्त्व और ऋग्वेद स्वरूप है। श्रीमहाकाली देवताकी प्रसन्नताके लिये प्रथम चरित्रके जपमें विनियोग किया जाता है।

भगवान् विष्णुके सो जानेपर मधु और कैटभको मारनेके लिये कमलजन्मा ब्रह्माजीने जिनका स्तवन किया था, उन महाकाली देवीका मैं सेवन करता हूँ। वे अपने दस हाथोंमें खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, मस्तक और शंख धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे समस्त अंगोंमें दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके शरीरकी कान्ति नीलमणिके समान है तथा वे दस मुख और दस पैरोंसे युक्त हैं।

ॐ नमश्चण्डिकायै[१]

'ॐ' ऐं मार्कण्डेय उवाच॥ १॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम॥ २॥

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः॥ ३॥

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले॥ ४॥

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा॥ ५॥

मार्कण्डेयजी बोले—॥ १॥ सूर्यके पुत्र सावर्णि जो आठवें मनु कहे जाते हैं, उनकी उत्पत्तिकी कथा विस्तारपूर्वक कहता हूँ, सुनो॥ २॥ सूर्यकुमार महाभाग सावर्णि भगवती महामायाके अनुग्रहसे जिस प्रकार मन्वन्तरके स्वामी हुए, वही प्रसंग सुनाता हूँ॥ ३॥ पूर्वकालकी बात है, स्वारोचिष मन्वन्तरमें सुरथ नामके एक राजा थे, जो चैत्रवंशमें उत्पन्न हुए थे। उनका समस्त भूमण्डलपर अधिकार था॥ ४॥ वे प्रजाका अपने औरस पुत्रोंकी भाँति धर्मपूर्वक पालन करते थे; तो भी उस समय कोलाविध्वंसी[२] नामके क्षत्रिय उनके शत्रु हो गये॥ ५॥

---

१. ॐ चण्डीदेवीको नमस्कार है।

२. 'कोलाविध्वंसी' यह किसी विशेष कुलके क्षत्रियोंकी संज्ञा है। दक्षिणमें 'कोला' नगरी प्रसिद्ध है, वह प्राचीन कालमें राजधानी थी। जिन क्षत्रियोंने उसपर आक्रमण करके उसका विध्वंस किया, वे 'कोलाविध्वंसी' कहलाये।

तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः॥ ६ ॥

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः॥ ७ ॥

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः॥ ८ ॥

ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्॥ ९ ॥

स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम्॥ १० ॥

राजा सुरथकी दण्डनीति बड़ी प्रबल थी। उनका शत्रुओंके साथ संग्राम हुआ। यद्यपि कोलाविध्वंसी संख्यामें कम थे, तो भी राजा सुरथ युद्धमें उनसे परास्त हो गये॥ ६॥ तब वे युद्धभूमिसे अपने नगरको लौट आये और केवल अपने देशके राजा होकर रहने लगे (समूची पृथ्वीसे अब उनका अधिकार जाता रहा), किंतु वहाँ भी उन प्रबल शत्रुओंने उस समय महाभाग राजा सुरथपर आक्रमण कर दिया॥ ७॥

राजाका बल क्षीण हो चला था; इसलिये उनके दुष्ट, बलवान् एवं दुरात्मा मन्त्रियोंने वहाँ उनकी राजधानीमें भी राजकीय सेना और खजानेको हथिया लिया॥ ८॥ सुरथका प्रभुत्व नष्ट हो चुका था, इसलिये वे शिकार खेलनेके बहाने घोड़ेपर सवार हो वहाँसे अकेले ही एक घने जंगलमें चले गये॥ ९॥ वहाँ उन्होंने विप्रवर मेधा मुनिका आश्रम देखा, जहाँ कितने ही हिंसक जीव [अपनी स्वाभाविक हिंसावृत्ति छोड़कर] परम शान्तभावसे रहते थे। मुनिके बहुत-से शिष्य उस वनकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ १०॥

तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे॥ ११॥
सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः*।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत्॥ १२॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः॥ १३॥
मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः॥ १४॥
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम्।
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम्॥ १५॥
संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः॥ १६॥
तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः॥ १७॥

वहाँ जानेपर मुनिने उनका सत्कार किया और वे उन मुनिश्रेष्ठके आश्रमपर इधर-उधर विचरते हुए कुछ कालतक रहे॥ ११॥ फिर ममतासे आकृष्टचित्त होकर वहाँ इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'पूर्वकालमें मेरे पूर्वजोंने जिसका पालन किया था, वही नगर आज मुझसे रहित है। पता नहीं, मेरे दुराचारी भृत्यगण उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करते हैं या नहीं। जो सदा मदकी वर्षा करनेवाला और शूरवीर था, वह मेरा प्रधान हाथी अब शत्रुओंके अधीन होकर न जाने किन भोगोंको भोगता होगा? जो लोग मेरी कृपा, धन और भोजन पानेसे सदा मेरे पीछे-पीछे चलते थे, वे निश्चय ही अब दूसरे राजाओंका अनुसरण करते होंगे। उन अपव्ययी लोगोंके द्वारा सदा खर्च होते रहनेके कारण अत्यन्त कष्टसे जमा किया हुआ मेरा वह खजाना खाली हो जायगा।' ये तथा और भी कई बातें राजा सुरथ निरन्तर सोचते रहते थे। एक दिन उन्होंने वहाँ विप्रवर मेधाके आश्रमके निकट एक वैश्यको देखा और उससे पूछा—'भाई! तुम

* पाठान्तर—ममत्वाकृष्टमानसः।

सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम्॥ १८॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम्॥ १९॥

वैश्य उवाच ॥ २०॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले॥ २१॥
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम्॥ २२॥
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम्॥ २३॥
प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम्॥ २४॥
कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः॥ २५॥

राजोवाच ॥ २६॥

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः॥ २७॥

कौन हो? यहाँ तुम्हारे आनेका क्या कारण है? तुम क्यों शोकग्रस्त और अनमने-से दिखायी देते हो?' राजा सुरथका यह प्रेमपूर्वक कहा हुआ वचन सुनकर वैश्यने विनीतभावसे उन्हें प्रणाम करके कहा— ॥ १२—१९॥

वैश्य बोला—॥ २०॥ राजन्! मैं धनियोंके कुलमें उत्पन्न एक वैश्य हूँ। मेरा नाम समाधि है॥ २१॥ मेरे दुष्ट स्त्री-पुत्रोंने धनके लोभसे मुझे घरसे बाहर निकाल दिया है। मैं इस समय धन, स्त्री और पुत्रोंसे वंचित हूँ। मेरे विश्वसनीय बन्धुओंने मेरा ही धन लेकर मुझे दूर कर दिया है, इसलिये दुःखी होकर मैं वनमें चला आया हूँ। यहाँ रहकर मैं इस बातको नहीं जानता कि मेरे पुत्रोंकी, स्त्रीकी और स्वजनोंकी कुशल है या नहीं। इस समय घरमें वे कुशलसे रहते हैं अथवा उन्हें कोई कष्ट है?॥ २२—२४॥ वे मेरे पुत्र कैसे हैं? क्या वे सदाचारी हैं अथवा दुराचारी हो गये हैं?॥ २५॥

राजाने पूछा—॥ २६॥ जिन लोभी स्त्री-पुत्र आदिने धनके कारण

तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम्॥ २८॥

वैश्य उवाच ॥ २९॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः॥ ३०॥
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः।
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः॥ ३१॥
पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते॥ ३२॥
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते॥ ३३॥
करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम्॥ ३४॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ३५॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ॥ ३६॥

तुम्हें घरसे निकाल दिया, उनके प्रति तुम्हारे चित्तमें इतना स्नेहका बन्धन क्यों है॥ २७-२८॥

वैश्य बोला—॥ २९॥ आप मेरे विषयमें जैसी बात कहते हैं, वह सब ठीक है॥ ३०॥ किंतु क्या करूँ, मेरा मन निष्ठुरता नहीं धारण करता। जिन्होंने धनके लोभमें पड़कर पिताके प्रति स्नेह, पतिके प्रति प्रेम तथा आत्मीयजनके प्रति अनुरागको तिलांजलि दे मुझे घरसे निकाल दिया है, उन्हींके प्रति मेरे हृदयमें इतना स्नेह है। महामते! गुणहीन बन्धुओंके प्रति भी जो मेरा चित्त इस प्रकार प्रेममग्न हो रहा है, यह क्या है—इस बातको मैं जानकर भी नहीं जान पाता। उनके लिये मैं लंबी साँसें ले रहा हूँ और मेरा हृदय अत्यन्त दुःखित हो रहा है॥ ३१—३३॥ उन लोगोंमें प्रेमका सर्वथा अभाव है; तो भी उनके प्रति जो मेरा मन निष्ठुर नहीं हो पाता, इसके लिये क्या करूँ?॥ ३४॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥ ३५॥ ब्रह्मन्! तदनन्तर राजाओंमें श्रेष्ठ

समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम्॥ ३७॥
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ॥ ३८॥

राजोवाच ॥ ३९॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत्॥ ४०॥
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि॥ ४१॥
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम।
अयं च निकृतः* पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः॥ ४२॥
स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ॥ ४३॥
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ।

सुरथ और वह समाधि नामक वैश्य दोनों साथ-साथ मेधा मुनिकी सेवामें उपस्थित हुए और उनके साथ यथायोग्य न्यायानुकूल विनयपूर्ण बर्ताव करके बैठे। तत्पश्चात् वैश्य और राजाने कुछ वार्तालाप आरम्भ किया॥ ३६—३८॥

राजाने कहा—॥ ३९॥ भगवन्! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ, उसे बताइये॥ ४०॥ मेरा चित्त अपने अधीन न होनेके कारण वह बात मेरे मनको बहुत दुःख देती है। जो राज्य मेरे हाथसे चला गया है, उसमें और उसके सम्पूर्ण अंगोंमें मेरी ममता बनी हुई है॥ ४१॥ मुनिश्रेष्ठ! यह जानते हुए भी कि वह अब मेरा नहीं है, अज्ञानीकी भाँति मुझे उसके लिये दुःख होता है; यह क्या है? इधर यह वैश्य भी घरसे अपमानित होकर आया है। इसके पुत्र, स्त्री और भृत्योंने इसे छोड़ दिया है॥ ४२॥ स्वजनोंने भी इसका परित्याग कर दिया है, तो भी यह उनके प्रति अत्यन्त हार्दिक स्नेह रखता है। इस प्रकार यह तथा मैं—

---

* पा०—निष्कृतः।

तत्किमेतन्महाभाग[१] यन्मोहो ज्ञानिनोरपि॥ ४४॥
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता॥ ४५॥

ऋषिरुवाच ॥ ४६ ॥

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे॥ ४७॥
विषयश्च[२] महाभाग याति[३] चैवं पृथक् पृथक्।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे॥ ४८॥
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं[४] तु ते न हि केवलम्॥ ४९॥
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम्॥ ५०॥

दोनों ही बहुत दुःखी हैं॥ ४३॥ जिसमें प्रत्यक्ष दोष देखा गया है, उस विषयके लिये भी हमारे मनमें ममताजनित आकर्षण पैदा हो रहा है। महाभाग! हम दोनों समझदार हैं; तो भी हममें जो मोह पैदा हुआ है, यह क्या है? विवेकशून्य पुरुषकी भाँति मुझमें और इसमें भी यह मूढ़ता प्रत्यक्ष दिखायी देती है॥ ४४-४५॥

ऋषि बोले—॥ ४६॥ महाभाग! विषयमार्गका ज्ञान सब जीवोंको है॥ ४७॥ इसी प्रकार विषय भी सबके लिये अलग-अलग हैं, कुछ प्राणी दिनमें नहीं देखते और दूसरे रातमें ही नहीं देखते॥ ४८॥ तथा कुछ जीव ऐसे हैं, जो दिन और रात्रिमें भी बराबर ही देखते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य समझदार होते हैं; किंतु केवल वे ही ऐसे नहीं होते॥ ४९॥ पशु, पक्षी और मृग आदि सभी प्राणी समझदार होते हैं। मनुष्योंकी समझ भी वैसी ही होती है, जैसी उन मृग और पक्षियोंकी होती है॥ ५०॥

---

१. पा०—तत्केनैत०। २. पा०—याश्च। ३. पा०—यान्ति। ४. पा०—किंनु ते।

मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु॥ ५१॥
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति॥ ५२॥
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान्[1] किं न पश्यसि।
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः॥ ५३॥
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा[2]।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः॥ ५४॥
महामाया हरेश्चैषा[3] तया सम्मोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥ ५५॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्॥ ५६॥

तथा जैसी मनुष्योंकी होती है,वैसी ही उन मृग-पक्षी आदिकी होती है। यह तथा अन्य बातें भी प्रायः दोनोंमें समान ही हैं। समझ होनेपर भी इन पक्षियोंको तो देखो, ये स्वयं भूखसे पीड़ित होते हुए भी मोहवश बच्चोंकी चोंचमें कितने चावसे अन्नके दाने डाल रहे हैं! नरश्रेष्ठ! क्या तुम नहीं देखते कि ये मनुष्य समझदार होते हुए भी लोभवश अपने किये हुए उपकारका बदला पानेके लिये पुत्रोंकी अभिलाषा करते हैं? यद्यपि उन सबमें समझकी कमी नहीं है, तथापि वे संसारकी स्थिति (जन्म-मरणकी परम्परा) बनाये रखनेवाले भगवती महामायाके प्रभावद्वारा ममतामय भँवरसे युक्त मोहके गहरे गर्तमें गिराये गये हैं। इसलिये इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी योगनिद्रारूपा जो भगवती महामाया हैं, उन्हींसे यह जगत् मोहित हो रहा है। वे भगवती महामायादेवी ज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल देती हैं। वे ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्की सृष्टि करती हैं तथा वे ही प्रसन्न होनेपर

---

१. पा०—नन्वेते। २. पा०—रिणः। ३. पा०—चैतत्।

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी॥ ५७॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥ ५८॥

राजोवाच ॥ ५९॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्॥ ६०॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च[1] किं द्विज।
यत्प्रभावा[2] च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा॥ ६१॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर॥ ६२॥

ऋषिरुवाच ॥ ६३॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥ ६४॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥ ६५॥

मनुष्योंको मुक्तिके लिये वरदान देती हैं। वे ही परा विद्या संसार-बन्धन और मोक्षकी हेतुभूता सनातनीदेवी तथा सम्पूर्ण ईश्वरोंकी भी अधीश्वरी हैं॥ ५१—५८॥

राजाने पूछा—॥ ५९॥ भगवन्! जिन्हें आप महामाया कहते हैं, वे देवी कौन हैं? ब्रह्मन्! उनका आविर्भाव कैसे हुआ? तथा उनके चरित्र कौन-कौन हैं? ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षे! उन देवीका जैसा प्रभाव हो, जैसा स्वरूप हो और जिस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ हो, वह सब मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ॥ ६०—६२॥

ऋषि बोले—॥ ६३॥ राजन्! वास्तवमें तो वे देवी नित्यस्वरूपा ही हैं। सम्पूर्ण जगत् उन्हींका रूप है तथा उन्होंने समस्त विश्वको व्याप्त कर रखा है, तथापि उनका प्राकट्य अनेक प्रकारसे होता है। वह मुझसे सुनो। यद्यपि वे नित्य और अजन्मा हैं, तथापि जब देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये

---

१. पा०—कर्म चास्याश्च। २. पा०—यत्स्वभावा।

उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते॥ ६६॥
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ॥ ६७॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः॥ ६८॥
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम्।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः॥ ६९॥
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम्*।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्॥ ७०॥
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः॥ ७१॥

प्रकट होती हैं, उस समय लोकमें उत्पन्न हुई कहलाती हैं। कल्पके अन्तमें जब सम्पूर्ण जगत् एकार्णवमें निमग्न हो रहा था और सबके प्रभु भगवान् विष्णु शेषनागकी शय्या बिछाकर योगनिद्राका आश्रय ले सो रहे थे, उस समय उनके कानोंके मैलसे दो भयंकर असुर उत्पन्न हुए, जो मधु और कैटभके नामसे विख्यात थे। वे दोनों ब्रह्माजीका वध करनेको तैयार हो गये। भगवान् विष्णुके नाभिकमलमें विराजमान प्रजापति ब्रह्माजीने जब उन दोनों भयानक असुरोंको अपने पास आया और भगवान्‌को सोया हुआ देखा, तब एकाग्रचित्त होकर उन्होंने भगवान् विष्णुको जगानेके लिये उनके नेत्रोंमें निवास करनेवाली योगनिद्राका स्तवन आरम्भ किया। जो इस विश्वकी अधीश्वरी, जगत्‌को धारण करनेवाली, संसारका पालन और संहार करनेवाली तथा तेजःस्वरूप भगवान् विष्णुकी अनुपम शक्ति हैं, उन्हीं भगवती निद्रादेवीकी भगवान् ब्रह्मा स्तुति करने लगे॥ ६४—७१॥

---

* किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद ही 'ब्रह्मोवाच' है। तथा 'निद्रां भगवतीं' इस श्लोकार्धके स्थानमें—'स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलतेजसः॥' ऐसा पाठ है।

ब्रह्मोवाच॥ ७२॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारःस्वरात्मिका॥ ७३॥

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः॥ ७४॥

त्वमेव संध्या* सावित्री त्वं देवि जननी परा।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्॥ ७५॥

त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने॥ ७६॥

तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः॥ ७७॥

ब्रह्माजीने कहा—॥ ७२॥ देवि! तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वषट्कार हो। स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं जीवनदायिनी सुधा हो। नित्य अक्षर प्रणवमें अकार, उकार, मकार—इन तीन मात्राओंके रूपमें तुम्हीं स्थित हो तथा इन तीन मात्राओंके अतिरिक्त जो बिन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका विशेषरूपसे उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो। देवि! तुम्हीं संध्या, सावित्री तथा परम जननी हो। देवि! तुम्हीं इस विश्व-ब्रह्माण्डको धारण करती हो। तुमसे ही इस जगत्की सृष्टि होती है। तुम्हींसे इसका पालन होता है और सदा तुम्हीं कल्पके अन्तमें सबको अपना ग्रास बना लेती हो। जगन्मयी देवि! इस जगत्की उत्पत्तिके समय तुम सृष्टिरूपा हो, पालन-कालमें स्थितिरूपा हो तथा कल्पान्तके समय संहाररूप धारण करनेवाली हो। तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति,

---

* पा०—सा त्वं।

महामोहा च भवती महादेवी महासुरी[१]।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी॥ ७८॥
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा॥ ७९॥
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा॥ ८०॥
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा।
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी॥ ८१॥
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी।
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके॥ ८२॥
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा[२]।
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति[३] यो जगत्॥ ८३॥

महामोहरूपा, महादेवी और महासुरी हो। तुम्हीं तीनों गुणोंको उत्पन्न करनेवाली सबकी प्रकृति हो। भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तुम्हीं हो। तुम्हीं श्री, तुम्हीं ईश्वरी, तुम्हीं ह्री और तुम्हीं बोधस्वरूपा बुद्धि हो। लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा भी तुम्हीं हो। तुम खड्गधारिणी, शूलधारिणी, घोररूपा तथा गदा, चक्र, शंख और धनुष धारण करनेवाली हो। बाण, भुशुण्डी और परिघ—ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं। तुम सौम्य और सौम्यतर हो—इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो। पर और अपर—सबसे परे रहनेवाली परमेश्वरी तुम्हीं हो। सर्वस्वरूपे देवि! कहीं भी सत्-असत्‌रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं और उन सबकी जो शक्ति है, वह तुम्हीं हो। ऐसी अवस्थामें तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है? जो इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन भगवान्‌को भी

१. पा०—महेश्वरी। २. पा०—मया। ३. पा०—पातात्ति।

सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च॥ ८४॥
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता॥ ८५॥
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ।
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु॥ ८६॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ॥ ८७॥

ऋषिरुवाच॥ ८८॥

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा॥ ८९॥
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ ९०॥
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः॥ ९१॥

जब तुमने निद्राके अधीन कर दिया है, तब तुम्हारी स्तुति करनेमें यहाँ कौन समर्थ हो सकता है? मुझको, भगवान् शंकरको तथा भगवान् विष्णुको भी तुमने ही शरीर धारण कराया है; अतः तुम्हारी स्तुति करनेकी शक्ति किसमें है? देवि! तुम तो अपने इन उदार प्रभावोंसे ही प्रशंसित हो। ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मधु और कैटभ हैं, इनको मोहमें डाल दो और जगदीश्वर भगवान् विष्णुको शीघ्र ही जगा दो। साथ ही इनके भीतर इन दोनों महान् असुरोंको मार डालनेकी बुद्धि उत्पन्न कर दो॥ ७३—८७॥

ऋषि कहते हैं—॥ ८८॥ राजन्! जब ब्रह्माजीने वहाँ मधु और कैटभको मारनेके उद्देश्यसे भगवान् विष्णुको जगानेके लिये तमोगुणकी अधिष्ठात्री देवी योगनिद्राकी इस प्रकार स्तुति की, तब वे भगवान्‌के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षःस्थलसे निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीकी दृष्टिके समक्ष खड़ी हो गयीं। योगनिद्रासे मुक्त होनेपर जगत्‌के स्वामी भगवान् जनार्दन उस

एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ।
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ॥ ९२ ॥
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं[1] ब्रह्माणं जनितोद्यमौ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः॥ ९३ ॥
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ॥ ९४ ॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम्॥ ९५ ॥

श्रीभगवानुवाच॥ ९६ ॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि॥ ९७ ॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम[2]॥ ९८ ॥

ऋषिरुवाच॥ ९९ ॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत्॥ १०० ॥

एकार्णवके जलमें शेषनागकी शय्यासे जाग उठे। फिर उन्होंने उन दोनों असुरोंको देखा। वे दुरात्मा मधु और कैटभ अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी थे और क्रोधसे लाल आँखें किये ब्रह्माजीको खा जानेके लिये उद्योग कर रहे थे। तब भगवान् श्रीहरिने उठकर उन दोनोंके साथ पाँच हजार वर्षोंतक केवल बाहुयुद्ध किया। वे दोनों भी अत्यन्त बलके कारण उन्मत्त हो रहे थे। इधर महामायाने भी उन्हें मोहमें डाल रखा था; इसलिये वे भगवान् विष्णुसे कहने लगे—'हम तुम्हारी वीरतासे संतुष्ट हैं। तुम हमलोगोंसे कोई वर माँगो'॥ ८९—९५॥

श्रीभगवान् बोले—॥ ९६॥ यदि तुम दोनों मुझपर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथसे मारे जाओ। बस, इतना-सा ही मैंने वर माँगा है। यहाँ दूसरे किसी वरसे क्या लेना है॥ ९७-९८॥

ऋषि कहते हैं—॥ ९९॥ इस प्रकार धोखेमें आ जानेपर जब उन्होंने

---

१. पा०—णौ हन्तुं। २. पा०—मया ।

विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः[1]।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता॥ १०१॥

ऋषिरुवाच॥ १०२॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता।
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः॥ १०३॥
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम्।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते॥ ऐं ॐ॥ १०४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥
उवाच १४, अर्धश्लोकाः २४, श्लोकाः ६६,
एवमादितः॥ १०४॥

सम्पूर्ण जगत्‌में जल-ही-जल देखा, तब कमलनयन भगवान्‌से कहा—'जहाँ पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो—जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो'॥ १००-१०१॥

ऋषि कहते हैं—॥ १०२॥ तब 'तथास्तु' कहकर शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान्‌ने उन दोनोंके मस्तक अपनी जाँघपर रखकर चक्रसे काट डाले। इस प्रकार ये देवी महामाया ब्रह्माजीकी स्तुति करनेपर स्वयं प्रकट हुई थीं। अब पुनः तुमसे उनके प्रभावका वर्णन करता हूँ, सुनो॥ १०३-१०४॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके
अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'मधु-कैटभ-वध' नामक
पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

---

१. मार्कण्डेयपुराणकी कई प्रतियोंमें यहाँ 'प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः।' इतना अधिक पाठ है।